वीर संवत २४९२, माध कृष्णपक्ष ४, बुधवार

दि.९-२-१९६६, गाथा १५ से १७, प्रवचन नं.-२१

तीसरी ढाल की पन्द्रहवीं गाथा चली न ? देखो ! अन्त में उसमें कहा कि जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव, भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित छह द्रव्यों और नौं तत्त्वोंमें से अपनी आत्मा एक स्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड, उसे राग से भिन्न करके, अन्तर अनुभव में प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीडी है। यह अभी १७ (वीं गाथा में) आयेगा। समझ में आया ? इस सम्यग्दर्शन प्राप्त (हुए जीव को) चारित्रमोह के उदय के वश होनेवाले विषयासक्ति-भोगासक्ति आरम्भ के परिणाम होने पर भी, उस सम्यग्दृष्टि को देव के इन्द्र भी उसका आदर करते हैं। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म। ऐसा विषय कषाय, ऐसे तीन कषाय के परिणाम सम्यग्दृष्टि को होते हैं; इसलिए उसके आधीन विषय की आसक्ति होती है और आरम्भ-परिग्रह भी अन्दर तीन कषाय परिणाम बहुत होते हैं। तीन कषाय के (परिणाम हो) तो भी अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का भाव नहीं है; इसलिए उस विकार का स्वामीपना नहीं है और अनन्त गुणों का चैतन्य पिण्ड, सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कहा, देखा हुआ ऐसा आत्मा, उस आत्मा को अन्दर में दर्शन-श्रद्धा निर्विकल्प प्रतीति में लेने से अनन्तानुबन्धी का अभाव होने से उसे आत्मा की शान्ति और आनन्द के अनुभव में, तीन कषाय के वश होने पर भी, देव उसे पूजते हैं - ऐसा इस सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है।

मुमुक्षु :- पहले में पहला धर्म यह।

उत्तर :- पहले में पहला धर्म यह। यह इसमें अभी कहेंगे। सम्यग्दर्शन क्या है ? वह चीज क्या कहलाती है ? जैन के अलावा अन्यमति में तो यह बात तो तीन काल - तीन लोक में कहीं नहीं हो सकती।

सम्यग्दृष्टि, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को तो अभ्यन्तर में किसी प्रकार नहीं मानता, उनका

आदर नहीं करता, उनका विनय नहीं करता, उनका बहुमान नहीं करता। यह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन में (ऐसा होता है)। निश्चयसम्यग्दर्शन में तो आत्मा एक स्वरूप अखण्ड आनन्द अनन्त गुणस्वरूप एकरूप, हाँ ! उसकी अन्तर में निर्विकल्प-रागरहित की अनुभव होकर प्रतीति (हुई, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है)। उसके साथ व्यवहार समकित में कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का आदर नहीं करता, सेवन नहीं करता, बहुमान नहीं करता। उनका बहुमान उसे अन्तर में नहीं होता। समझ में आया ? ऐसे जीव को...

यहाँ तो ऐसा कहा न ?

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजैं हैं;
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजैं हैं।

परन्तु अन्याय नहीं होता, हाँ ! उसे अन्याय के ऐसे कर्तव्य नहीं होते। यह अनन्तानुबन्धी गया है, इस कारण आत्मदर्शी को अनन्तानुबन्धी के योग्य जो अन्याय के कार्य (हों) - ऐसे कार्य उसे नहीं होते। 'भावदीपिका' में 'दीपचन्दजी' ने इसका बहुत विस्तार लिया है। समझ में आया ?

'**चरितमोहवश लेश...**' जो संयम के स्थान कहलाते हैं, संयम के स्थान, हाँ ! दूसरी कषाय का, तीसरी कषाय का अभाव होकर जो संयम-स्थान कहलाते हैं, वह संयम-स्थान इसे नहीं है, परन्तु स्वरूप में दृष्टिपूर्वक स्वरूपाचरण है, वह यहाँ नहीं लिया हैं, क्योंकि संयम का वजन आगे लेंगे। चारित्र के भाग में संयम का वजन देंगे। वहाँ स्वरूपाचरण अर्थात् संयम का स्वरूपाचरण कैसा होता है ? - उसकी व्याख्या आगे करेंगे। यहाँ संयम का स्थानरूपी संयम नहीं है, उसे स्वरूपाचरण नहीं कहा है, इतना यहाँ कहा जाता है।

मुमुक्षु :- सीताजी को अन्याय नहीं हुआ ?

उत्तर :- वह अन्याय नहीं है। उन्हें लोक की लाईन में अभी उतना राग था। उस राग के कारण लौकिक इतना होता है। ज्ञान में आनन्द का अनुभव वर्तता है। अरे... ! इस आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द... सम्यग्दर्शन में हाँ ! इस कारण उन्हें कहीं आनन्द का सन्तोष हो - ऐसी

उन्हें प्रीति और रुचि नहीं होती। यह बात है जरा। समझ में आया ?

कहते हैं, '**सुरनाथ जजै हैं...**' परन्तु इससे कहीं उसमें उसे गृद्धि है, एकाकार है, उसमे - विषय-भोग में (तन्मय है - ऐसा नहीं है)। ऐसा लोग कहते हैं न कि हमारे क्रम में आया होवे तो ? भाई ! ऐसा नहीं होता प्रभु ! जिसे क्रम में आया हो - ऐसी जिसकी मान्यता है, उसे तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी मिट गये होते हैं। इसमें समझ में आया ? जिसे, क्रम में आयी हुई बात (है) - ऐसा जो मानता है, उसे तो मिथ्यात्व अर्थात् भ्रम और अनन्तानुबन्धी मिट गया है। समझ में आया ? उसे आत्मा का अनुभव, प्रतीति और आत्मा का आनन्द आया है। उस आनन्द के समक्ष यह क्रमबद्ध आवे, उसे जानता है - ऐसा कहा जाता है।

अज्ञानी होकर (ऐसा कहे कि) हमारे क्रम में ऐसा आना था (तो यह ठीक नहीं है)। यह देखो ! समकिती को संयम नहीं है, इसलिए हमारे भी ऐसा तीव्र असंयम होवे या ऐसा होवे तो क्या बाधा ? ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। सम्यग्दर्शन में तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि वर्तती है। समझ में आया ? यह तो जरा विचार क्या आया ? कि लेश संयम नहीं है, इसलिए कोई (ऐसा कहे कि) ऐसा हमारे क्रम में ऐसे परस्त्री के भोग आये... समझ में आया ? मांस खाने की क्रिया या ऐसी होवे तो (वह कहे) क्रम में (होती है), नहीं समझता, उस वस्तु को नहीं समझता। समझ में आया ?

जिसे क्रमबद्धपर्याय का निश्चय हुआ है... यहाँ तो क्रमबद्ध के नाम से स्वच्छन्द सेवन करता है, इस बहाने (सेवन करे) ऐसा नहीं होता (- यह कहना है)। समझमें आया ? क्रमबद्ध में यह नहीं होता, यह मेरा (कहना है)। अभी तो यह सिद्ध करना है। सम्यग्दर्शन में, क्रमबद्ध में सम्यग्दर्शन आ जाता है। समझ में आया ? जो देहादि की या स्व की क्रमसर पर्याय होती है - ऐसा जिसे अन्तर्मुख में अनुभव में निर्णय होता है, उसे आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है। उसे क्रम(सर) हो, उसका यह जाननेवाला होता है। उसकी मर्यादा ऐसी होती है। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई !

मुमुक्षु :- आनन्द का अनुभव हुआ, वही क्रमबद्ध को मानता है न ?

उत्तर :- वही क्रमबद्ध को मानता है, दूसरा नहीं मानता। क्यों ? क्योंकि उसे राग और

पर की क्रिया की कर्तापने की बुद्धि छूट गयी है। उसे वह बुद्धि घुसी है ज्ञान और आनन्द में। आहा..हा...! वह अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप भगवान और अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु आत्मा, उसके अनुभव में वह क्रमबद्ध का जाननेवाला रहता है। उसे भले लेश संयम न हो तो भी उसे सम्यग्दर्शन और आनन्द का भान है और असंयम में वर्तता होता है, उसके क्रम में वह भाव आया है। समझ में आया ? तथापि उसे देव, देवो के इन्द्र भी जिसे साधर्मी के रूप में बहुमान देते हैं। ओ..हो...! हम देवरूप से आये, परन्तु मनुष्यपने में प्राप्त ऐसे रोग का शरीर, मेला, ऐसा शरीर, उसके अन्दर ऐसा काल, उसमें तू यह आत्मदर्शन को प्राप्त हुआ। ओ..हो...! उसे बहुमान देते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह महान कीमती चीज़ की बात करते हैं। आहा..हा...!

कहते हैं, गृहस्थ में रहने पर भी जल से भिन्न कमल (जैसे होता है वैसे) उसका उसे लेप नहीं है, लेप नही है। आहा...! जिसने अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के चैतन्य के दरबार खोले हैं, उसे इस विकल्प में प्रेम कहाँ है ? समझ में आया ? असंयम है, हाँ ! परन्तु उस असंयम में उसे रस, प्रेम नहीं है। क्या करे, आ जाता है, स्थिरता नहीं है, इसलिए सहन करता है, बेगार की तरह (सहन करता है)। समझ में आया ?

कहते है, '**नगरनारी का प्यार...।**' जैसे बाहर वैश्या का प्यार दिखता है (परन्तु) अन्दर में नहीं। कुछ नहीं, कुछ नहीं; केवल पैसे का प्रेम है, उसका (प्रेम) नहीं। वैसे ही धर्मी को आत्मा के आनन्द के प्रेम के समक्ष गृहस्थाश्रम में होने पर भी पर में रुचि नहीं है।

'**हेम अमल।**' जैसे कीचड़ में सोना है; वैसे भगवान आत्मा देह, वाणी.. देखो ! देह, वाणी की अस्ति है, हाँ ! देह है, कर्म है, वाणी है, पुण्य-पाप के विकल्प भी हैं, यह सब अस्ति रखकर, उनसे रहित चिदानन्द के अनुभव की दृष्टि हुई। अकेला ऐसा कहे कि आत्मा एक ही है और दूसरा कुछ है नहीं - वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन का पता नहीं है। समझ में आया ? आहा..हा...! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा है, उसके अन्त गुण हैं, उनकी अनन्त पर्याय हैं। उसमें विकार की अवस्था भी है, उसे संयोग में शरीर, कर्म आदि सब है। ये है, उसमें अकेला आत्मा निकाला। अन्य (संयोगो को) रखा है, उड़ा नहीं दिया है।

मुमुक्षु :- कीचड़ में सोना ?

उत्तर :- हाँ, कीचड़ में कीचड़ है, कीचड़ है, सोना भी है - ऐसा कहते हैं। इसी तरह सम्यग्दृष्टि को पुण्य-पाप के भाव हैं, शरीरादि है, स्त्री आदि हैं, भोगादि की वासना है। आहा..हा... ! परन्तु उस कीचड़ में जैसे सोना छूता नहीं है, सोने को जंग नहीं लगता है; वैसे ही अन्तर दृष्टि चैतन्य पर सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा, सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा के पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द पर दृष्टि होने से उसे इस विषय-वासनादि होने पर भी लेप नहीं है। है अवश्य, हाँ ! है, उसकी बात है। सब उड़ गया, हो गया जाओ, अकेला आत्मा (है- ऐसा नहीं)। सम्यग्दर्शन हुआ तो फिर अकेला आत्मा (ही है), दूसरा कुछ नहीं - ऐसा नहीं है - ऐसी बात करते हैं, भाई ! वह असंयम है - ऐसा सिद्ध करके, सम्यग्दर्शन-आत्मभान हुआ, इसलिए उसे अब दूसरा कुछ नहीं रहा, असंयमभाव नहीं रहा, विषयवासना नहीं रही, विकल्प में आरम्भ का भाव ही नहीं, शरीर के संयोग का सम्बन्ध ही नहीं, बाह्य वस्तु ही नहीं - ऐसा नहीं है। आहा..हा... ! समझ में आया ? सब चीज़ हो और स्वयं भी अन्दर दूसरा अलग है; उस अलग के भान में अलग चीज़ में उसे एकत्व नहीं होता - ऐसा कहते हैं।

नीचे अन्तिम दृष्टान्त दिया है न ? रोगी को औषधि सेवन। समझ में आता है ? रोगी, औषधि सेवन करता है, परन्तु प्रेम होगा ? रहो सदा औषध (ऐसा होगा) ? रोग सदा रहना और औषध सदा (रहना), (डोक्टर को) बारम्बार बुलाना, (लोग) देखने आवे - ऐसा होगा ? धर्मी को उस रोग की तरह जैसे रोगी औषधि मानता है - ऐसे रागादि की वासना में, वह संयोग में दिखता है। उसे अन्दर में भावना नहीं होती।

कैदी को कारागृह - दूसरा दृष्टान्त दिया है न ? नीचे है न ? भाई ! कैदी को कारागृह। आहा..हा... ! जैसे कैदी कारागृह में पड़ा है, वैसे धर्मी को ये पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर, वाणी - इन सब कारागृह में स्वयं भिन्न कैदी है। उनका उसे उत्साह नहीं है। कारागृह का उत्साह होगा कि इसमें रहूँ ? लम्बा काल बढ़े तो ठीक ? गरीब मनुष्य को रोटियाँ नहीं मिलती हो तो ऐसा होता होगा कि यहाँ रहे, बाहर रोटियाँ नहीं मिलती। ऐसे कैदी को कारागृह में प्रेम नहीं होता। कारागृह कहा है न ? साधारण जेल नहीं। समझ में आया ? कठोर जेल, मजदूरी

कराकर दम निकाल दे। यह उस काठिया को बैठा दे – ऐसा नहीं है वहाँ। बंदीखाने ना मत करो, जैसे केदी को उत्साह नहीं है वैसे। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त गुण... अनन्त गुणरूप एक है। अकेला एक है – ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसे आत्मा के भान में, वह गृहस्थाश्रम में आसक्त नहीं होता, क्योंकि उसे कारागृह समान, रोग की औषधि समान मानता है।

समकित की महिमा, सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति स्थान तथा सर्वोत्तम सुख और सर्व धर्म का मूल

प्रथर नरक विन षट् भू ज्योतिष वान भबन षंड नारी;
थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत सम्यक् धारी।
तीन लोक तिहूँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी;
सकल धर्मको मूल यही, इस विन करनी दुखकारी।।१६।।

अन्वयार्थ :- (सम्यक्धारी) सम्यग्दृष्टि जीव (प्रथर नरकविन) पहले नरक के अतिरिक्त (षट् भू) शेष छह नरकों में - (ज्योतष) ज्योतिषियों देवों में, (वान) व्यंतर देवों मे, (भवन) भवनवासी देवों में (षंड) नपुंसको में, (नारी) स्त्रियों में, (थावर) पाँच स्थावरों में, (विकलत्रय) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रिय जीवों में तथा (पशु में) कर्मभूमि के पशुओं में (नहि उपजत) उत्पन्न नहीं होते। (तीनलोक) तीनलोक (तिहुकाल) तीनकाल में (दर्शन सो) सम्यग्दर्शन के समान (सुखकारी) सुखदायक (नहिं) अन्य कुछ नहीं है, (यही) यह सम्यग्दर्शन ही (सकल धरम को) समस्त धर्मों का (मूल) मूल है; (इस विन) इस सम्यग्दर्शन के बिना (करनी) समस्त क्रियाएँ (दुखकारी) दु:खदायक हैं।

भावार्ष :- सम्यग्दृष्टि जीव आयु पूर्ण होने पर जब मृत्यु प्राप्त करते हैं तब दूसरे से सातवें नरक के नारकी, ज्योतिषी व्यन्तर, भवनवासी, नपुंसक, सब प्रकार की स्त्री,

ऐकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कर्मभूमि के पशु नहीं होते; (नीच फलवाले, विकृत अंगवाले, अल्पायुवाले तथा दरिद्री नहीं होते) विमानवासी देव, भोगभूमि के मनुष्य अथवा तिर्यंच ही होते है। कर्मभूमि के तिर्यंच भी नहीं होते। कदाचित् *नरक में जायें तो पहले नरक से नीचे नहीं जाते। तीनलोक और तीनकाल में सम्यग्दर्शन के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह सम्यग्दर्शन ही सर्व धर्मों का मूल है। इसके अतिरिक्त जितने क्रियाकाण्ड हैं वे दु:खदायक हैं।

अब इस समकित की महिमा और सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान, सम्यग्दृष्टि कहाँ-कहाँ नहीं उत्पन्न होता, (वह कहते हैं)। यहाँ तो ऐसा है परन्तु अब भविष्य में भी कहाँ-कहाँ नहीं उत्पन्न होता - ऐसी बात करते हैं, भाई ! क्या कहा ? आत्मा की अन्तरदृष्टिवन्त सम्यग्दृष्टि को अभी यहाँ भी पर की एकत्वबुद्धि नहीं है। वस्तु सब है, परन्तु अब मरने के बाद अब भविष्य में भी उसे ऐसे स्थान नहीं होते, उसका ऐसा पुण्य साथ होता है, कहते हैं। पवित्रता तो ऐसी है; अब उसके साथ सम्यग्दृष्टि को पुण्य भी ऐसा होता है कि भविष्य में वह अमुक स्थान में उत्पन्न नहीं होता। आहा... ! और '**सर्वोत्तम सुख तथा सर्वधर्म का मूल-**' इन चार का इसमें वर्णन करते हैं।

प्रथर नरक विन षट् भू ज्योतिष वान भबन षंड नारी;
थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत सम्यक् धारी।

---

* ऐसी दशा में सम्यग्दृष्टि प्रथम नरक के नपुंसको में भी उत्पन्न होता है; उनसे भिन्न अन्य नपुंसकों में उसकी उत्पत्ति होने का निषेध हैं।

टिप्पणी :- जिस प्रकार श्रेणिक राजा सातवें नरक की आयु का बन्ध करके फिर समकित को प्राप्त हुए थे, उससे यद्यपि उन्हें नरक में तो जाना ही पड़ा किन्तु आयु सातवें नरक से घटकर पहले नरक की ही रही। इस प्रकार जो जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पूर्व तिर्यंच अथवा मनुष्य आयु का बन्ध करते हैं वे भोगभूमि में जाते हैं किन्तु कर्मभूमि में तिर्यंच अथवा मनुष्यरूप में उत्पन्न नहीं होते।

तीन लोक तिहूँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी;
सकल धर्मको मूल यही, इस विन करनी दुखकारी।।१६।।

देखो ! इसमें विशेष क्या कहते हैं ? ये सब स्थान हैं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि कुछ नहीं है, यह सब कुछ नहीं है; एक ही आत्मा... एक ही आत्मा, सब कुछ नहीं है – ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

प्रथर नरक विन षट् भू ज्योतिष वान भबन षंड नारी;
थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत सम्यक् धारी।

सम्यक्धारी, अभी सम्यग्दर्शन हुआ, फिर भी अभी उसे भव होते हैं। सम्यग्दर्शन हो गया, इसलिए अब भवमुक्त हो गया, आत्मानुभव हुआ इसलिए हो गया, इसलिए जाओ, अनन्त में अनन्त मिल गया – ऐसा नहीं है। उसे (–ऐसा कहनेवाले को) कुछ भान नहीं है। उसे भान ही नहीं है – आत्मा क्या ? सम्यग्दर्शन क्या ? बस ! हो गया, आत्मा का साक्षात्कार हुआ तो सबमें मिल गया, उसे फिर बाद में दो क्या और अनुभव क्या और यह क्या ?

यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि अनुभव उपरान्त उसे असंयम भाव है और असंयम में ऐसा अशुभ असंयम होने पर भी, उसे ऐसा अशुभ असंयम होने पर भी उसकी वासना में ऐसा शुभभाव होगा कि जिसमें वैमानिक स्वर्ग आदि में जाए – ऐसा जिसका पुण्य होता है। सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए उसे इस भव में मोक्ष हो जाए, फिर दूसरा कुछ नहीं, उसे भव-बव कुछ नहीं – ऐसा नहीं है, यह सिद्ध करते हैं।

तीन लोक तिहूँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी;
सकल धर्मको मूल यही, इस विन करनी दुखकारी।।

'**(सम्यक्त्व धारी) सम्यग्दृष्टि जीव (प्रथम नरक बिन)**' ऐसा कहकर सात नरक सिद्ध किये। सात नारकी (नरक) हैं, गति सात नारकी हैं; नीचे नारकी के सात स्थान हैं। अधोलोक है; कुछ नहीं (है) – ऐसा नहीं है। उसमें '**पहले नरक के अतिरिक्त शेष छह नरकों में...**' नहीं उपजता। समझ में आया ? पहली नरक में जाता है। आयु बँध गयी हो, सम्यग्दर्शन के

पहले आयु बंध गयी हो (तो)। सम्यग्दर्शन (होने के) बाद (नरक की) आयु नहीं बँधती। यहाँ तो समुच्चय बात की है न ? सम्यग्दृष्टि को आत्मदृष्टि हुई, अनुभव हुआ, तथापि उसे असंयम भाव आदि रहा; अब उसे असंयम होने पर भी उसे पुण्य ऐसा बँधेगा... समझ में आया ? कि वह छह नरको में तो नहीं ही जाएगा। पहली नरक में (जा सकता है, यदि पूर्व आयु बँध गई होवे तो।)

'**ज्योतिषी देवों में...**' नहीं जाता। ज्योतिष देव सिद्ध किये। ज्योतिष देव है। समझ में आया ? वह ज्योतिष में उत्पन्न नहीं होता। कोई कहे कि वह तो समकित है, देव में जाए। देव में जाता है परन्तु ज्योतिष में नहीं जाता। '**व्यंतरदेवों में...**' नहीं जाता। नीचे व्यन्तरदेव की भूमि है। यह ज्योतिषदेव है, उसमें नहीं जाता। '**भवनवासी देवों में...**' नहीं जाता। समझ में आया ? '**नपुंसकों में...**' पहले नरक में नपुंसक होता है, इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुष (मनुष्य) नपुंसक में नहीं जाता।

मुमुक्षु :- पहली नरक में जाता है...

उत्तर :- पहली नरक की आयु बँध गयी। कहा न ? पहले आयु बँध गई। पहले नरक और तिर्यञ्च की आयु बँध गयी हो... समझे न ? तिर्यञ्च की बँध गई हो तो भोगभुमि में जाता है। नरक की आयु बँध गई हो तो पहली नरक में जाता है। बँध गई हो, उसकी बात है। समकित के पहले मनुष्य की आयु बँध गयी हो तो वह भोगभूमि में जुगलिया में उत्पन्न होता है। मनुष्य और तिर्यञ्च समकिती ने पहले आयु न बाँधी हो तो स्वर्ग में ही जाते हैं - यह बात अभी अधिक सिद्ध करनी है। वैमानिक में जाता है। यहाँ नपुंसक से इनकार करते हैं तो वे कौनसे नपुंसक ? स्त्री-पुरुष के नपुंसक, मनुष्य और तिर्यञ्च के नपुंसक। समझ में आया ? नरक का नपुंसक होता है - यह बात तो पहले कही है। ओहो..हो...! कितनी बात सिद्ध करते हैं !

तीन वेद है, इतने देवों के स्थान हैं, इतनी नारकी के स्थान हैं, उसमें वह पहले नरक में जाता है, छह में नहीं जाता। देव के इतने स्थान - ज्योतिष, भवनपति और व्यंतर में नहीं जाता। मनुष्य में तीन वेद है - स्त्री, पुरुष और नपुंसक; तो वह नपुंसक में अवतरित नहीं होता। समझ

में आया ?

मुमुक्षु :- स्त्री में नहीं अवतरित होता ?

उत्तर :- वह तो बाद में कहेंगे। यहाँ तो पहले यह (कहते हैं)।

अब '**(नारी) स्त्रियों में...**' अवतरित नहीं होता। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्री नहीं होता। वैमानिक देव में भी इन्द्राणी नहीं होता। यह सब स्थान है, उनके योग्य परिणाम समकिती को ऐसे ही होते हैं। उसकी विधि, रीति कहते हैं। समझ में आया ? उसे नव तत्त्व का, जैसा है वैसा यथार्थ ज्ञान होता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहा..हा...! स्त्री में उत्पन्न नहीं होता। इन्द्राणी भी स्त्री होती है, वह मिथ्यादृष्टि हो, वह होती है, फिर भले वहाँ समकित प्राप्त करे और एकावतारी हो। सौधर्म देवलोक की 'शची' इन्द्राणी है, वह एकावतारी है, परन्तु यहाँ से उत्पन्न होती है, तब मिथ्यात्व लेकर उत्पन्न हुई है। यह सब अस्तित्व है। इस अस्तित्व में इतना अस्तित्व पूरा आत्मा पूर्ण अस्तित्व को अन्तर (में) स्वीकारा, उसे अभी असंयम का अस्तित्व होने पर भी, उसे ऐसे अमुक-अमुक अस्तित्व में उपजना नहीं होता - ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। आहा..हा...!

मूढ़ है, मूढ़ हो जाएगा मूढ़। विकल्प तोड़ो, विकल्प तोड़ो... क्या विकल्प तोड़े ? वस्तु क्या है ? अस्ति क्या अस्ति ? एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड भगवान एक-एक आत्मा अखण्ड है कौन ? विकल्प तोड़ डालो, विकल्प घटा डालो। बस ! किसका विकल्प घटे ? नास्ति हो जाएगा। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- समीप में है।

उत्तर :- समीप में है ? यह 'रजनीश' न ? हाँ ! वह गप्पेगप्प मारता है। बेचारें जैन भ्रम में पड़े हैं, कितने ही बेचारों को भान नहीं होता। अकेले वेदान्त... वेदान्त पढ़े हुए को बेचारों को बातें अच्छी लगती है। अत्यन्त मूढ़ता की बात है। वीतरागदर्शन से एक-एक बात एकदम उल्टी है; सब एकदम उल्टी (बात है)।

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सब देखा, सर्वज्ञ ने सब देखा, उसमें सर्वज्ञस्वभाव आत्मा

की प्रतीतिवाले को इन सब स्थानों में ऐसा स्थान नहीं होता। उसे निर्विकल्प अवस्था प्रकटी है इसलिए। परन्तु फिर भी अभी विकल्प है। ऐसा नहीं है कि सब एक हो गया है। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं न कि ईशु, महावीर, बौद्ध और गांधी सब एक ही है। महा मूढ़ है। आहा..हा..! बहुत होते हैं, बहुत देखे हैं न ? वहाँ आया था न ? उसका व्यक्ति है। 'मल्हारगढ़' पुस्तक लेकर आया था न ? महाराज ! यह देखो ! हमने कहा - गृहीत (मिथ्यादृष्टि का) हम नहीं पढ़ते हैं। उसे जरा अच्छा नहीं लगा। यह सब मिथ्यात्व की पुस्तकें हैं, सब मिथ्यात्व की पुस्तके हैं, कहा। 'मल्हारगढ़' लाया था। उसका एक व्यक्ति दाढ़ीवाला था। नहीं आया था ? अभी जैन में रहनेवालों को जैन का पता नहीं होता।

मुमुक्षु :- लौकिक बाते करते हैं।

उत्तर :- लौकिक बात नहीं, वे बाते लोकोत्तर करें, लौकिक तुम्हारे जैसी नहीं होती। बेचारे लोग उसमें उलझते हैं न ? ऐसा बस ! महावीर-कथित विचार छोड़ देना, बौद्ध-कथित विचार छोड़ देना, तब वे कहें - ओ..हो...! अपने भी 'कानजीस्वामी' कहते हैं कि विकल्प छोड़ देना। सब लगता है एक, हाँ !' श्रीमद्' भी ऐसा कहते हैं कि विकल्प छोड़ देना। समझ में आया ? कुछ पता नहीं।

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने अनन्त द्रव्य देखे हैं। उनमें से यह एक भगवान द्रव्य पूरा-पूर्ण अखण्ड एक द्रव्य है। ऐसे अखण्ड अनन्त आत्मा हैं। ऐसे एक अखण्ड आत्मा के भानसहित होने पर भी अभी उसका खण्डपना पर्याय में बाकी है। आहा..हा...! उस खण्ड में भी, वह असंयम के वश होने पर भी उसे ऐसा शुभभाव आवे, तब आयु बँधती है; अशुभभाव के काल में आयु नहीं बँधती - ऐसी उसकी मर्यादा है। आहा..हा...! समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि युद्ध में हो (-ऐसे) अशुभभाव के समय आयु नहीं बँधती - ऐसी उसकी मर्यादा है। समझ में आया ? आहा..हा...! यह वस्तु की स्थिति की मर्यादा ही ऐसी है।

कहते हैं, वह स्त्री में उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया ? '**पाँच स्थावरों में...**' पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु (वनस्पति) वस्तु है, हाँ ! पाँच स्थावर जीव हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति अनन्त जीव हैं। उन अनन्त जीवों में सम्यग्दृष्टि - राग और पर से भिन्न हुई अवस्था - उसमें नहीं उत्पन्न होता। उत्पन्न अवश्य होगा, अभी भव बाकी है इसलिए, परन्तु कहाँ ?

वैमानिक स्वर्ग मैं, पुरुषवेद में, मनुष्य-तिर्यञ्च की आयु बँध गयी हो तो भोगभूमि में जुगलिया में उत्पन्न हो, वह अलग बात है। समझ में आया ?

'**द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में...**' उत्पन्न नहीं होता। यह सब कितना विचार माँगते हैं ? '**कर्मभूमि के पशुओं में उत्पन्न नहीं होता।**' इसलिए स्पष्टीकरण किया। क्यों ? समझ में आया ? कि सम्यग्दृष्टि के पहले यदि तिर्यञ्च की आयु बँध गयी हो तो भोगभूमि में (उत्पन्न होता है)। यह भोगभूमि सिद्ध की। जुगलिया है, कितनों की तीन पल्य की लम्बी आयु है। समझ में आया ? तीन कोष के... तीन कोष के ऊँचे (लम्बे) न ? है। इस सम्यग्दृष्टि को पहले से पशु की आयु बँध गयी हो तो वहाँ जाता है। कर्मभूमि के पशु में नहीं जाता। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'**तीन लोक, तीन काल में सम्यग्दर्शन के समान दूसरा कोई सुखदायक नहीं है...**' आहा..हा... ! तीन लोक और तीन काल में... कितना वजन है।

तीन लोक तिहूँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी;

सकल धर्मको मूल यही, इस विन करनी दुखकारी।

इसके बिना क्रिया - पंच महाव्रत, दया, दान, व्रत, भक्ति, शास्त्र का ज्ञान, सम्यग्दर्शन के बिना शास्त्र का पठन, यह सब क्रियाकाण्ड दु:खकारी है। यहाँ करनी दु:खकारी आयी है, अपने तीनों दु:खकारी आया था, 'परमात्मप्रकाश' समझ में आया ? आहा..हा... ! भगवान आत्मा पूर्ण सर्वज्ञसवभावी है - ऐसी जहाँ अन्तर दृष्टि और अनुभव हुआ, कहते हैं - उस सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी जगत में कोई नहीं है। देखो ! सुखकारी (अर्थात्) किसका सुख ? आत्मा के आनन्द (जैसा) सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :- संयोगी सुख होगा न उसमें ?

उत्तर :- कहा है धूल में ? यह बात तो की (है)। संयोग का सुख है या नहीं उसे ? यह स्त्री, पुत्र, असंयम में पड़ा है वह। उसमें सुख माने तो सम्यग्दर्शन कहाँ है ? यह बात तो पहले हो गयी। होता है, दिखता है कि देखो, स्त्री के साथ बैठा है। अन्दर में लेश स्पर्शता नहीं है। वह तो कीचड़ में सोना कहा न ? इन ९६ हजार इन्द्राणी के वृन्द में समकिती बैठा हो, उनके साथ

बात करता हो, खिलखिलाकर हँसता हो, यह करता हो; अन्दर में कुछ लेना-देना नहीं है। यह वह बात। समझ में आया ?

मिथ्यादृष्टि त्यागी, ब्रह्मचारी, बाल ब्रह्मचारी हो और पूरी जिन्दगी स्त्री का सेवन (न किया हो)... समझ में आया ? पंच महाव्रत धारण किये हों, भगवानने कहा हो वैसा व्यवहार, हाँ ! पंच महाव्रत भगवान ने कहे वे, और नग्न दिगम्बर हुआ हो... समझ में आया ? परन्तु अन्तर में भेद - राग और पर से भेदज्ञान नहीं हैं, इस कारण दो भेद नहीं, वे दो एक है। अनेक को अनेक रूप न मानकर, अनेक को एकरूप अन्तर प्रतीत में अनुभव करता है। मूढ़ है, कहते हैं। उसे कोई त्याग नहीं है, कहते हैं। ठीक ! क्या हो गया परन्तु इसमें ? वह क्रिया तो देह की है। आहा..हा... !

भगवान आत्मा, राग और पर की पर्याय से अत्यन्त भिन्न (है)। समस्त वस्तुये हैं, होने पर भी उनके अस्तित्व में यह नहीं और इसके अस्तित्व में वे नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ? लोगों को भी वह बाहर की महिमा लगती है, हाँ ! बाह्यत्याग होवे, भाई ! (सम्यग्दृष्टि को) भव ही नहीं है। यह भव और भव के भाव का आदर नहीं है। अब प्रश्न कहाँ ? कहो, अकेला भव रहित स्वभाव का आदर है, कहो ! फिर भी कमजोरी के कारण ऐसा कोई राग आवे तो उसे भव रहता अवश्य है, इसीलिए तो कहा है। समझ में आया ? कहेंगे, कोई स्वर्ग में जाता है, कोई मोक्ष में जाता है। यहाँ तो स्वर्ग में ही जाता है। यहाँ तो आगे बढ़े हुए की बात नहीं करनी है न ? चौथे (गुणस्थानवाले) की बात करनी है। समझ में आया ?

'सम्यग्दर्शन जैसा सुखदायक दूसरा कुछ नहीं है...' दूसरा कुछ नहीं है - इसका अर्थ क्या है ? कि चारित्र सुखदायक नहीं या सम्यग्ज्ञान (सुखदायक नहीं) - ऐसा नहीं लेना। यहाँ तो सम्यग्दर्शन के अतरिक्त दूसरी चीज़ों (की बात है)। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सुखदायक है ही। वे सुखदायक नहीं है - ऐसा नहीं है। यहाँ तो तीन में पहली चीज़ तो सम्यग्दर्शन है, उसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी चीज़ हो - दया, दान, व्रत का भाव शुभ महाव्रत के परिणाम, बालब्रह्मचारी, बाह्य क्रियाकाण्ड, लाखों स्त्रियाँ छोड़कर, हजारों रानियाँ छोड़कर, बाह्य त्यागी हुआ हो तो भी अन्दर आत्मदर्शन क्या है - उसका भान नहीं है तो वह

मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दर्शन जैसा कोई सुख नहीं है और (मिथ्यादर्शन) जैसा दु:ख नहीं है। मिथ्यादर्शन जैसा दु:ख नहीं है। वह दु:खी है। आहा..हा...! अनाकुल भगवान आत्मा आकुलता की अस्ति से भिन्न है। ऐसे अनाकुल तत्त्व के भान बिना अकेली आकुलता के साथ एकता है, वह दु:खी है और आकुलता तथा अनाकुलता का भेद-भान है, उसके जैसा कोई सुखी नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा...! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- सुख के लिए पैसे का पूछता है।

उत्तर:- पैसे का पूछता है। दुनिया में तो यही पूछे न ? कितने पैसे हैं ? धूल है ? यह है ? यहाँ तो कहते हैं कि भाई ! तेरे विकल्प उत्पन्न होते हैं, वह दु:खदायक है। सम्यग्दृष्टि को विकल्प तो इस पुण्यबन्ध के कारण भाव आये, वह भाव दु:खदायक है। आते हैं, होते हैं परन्तु दु:खदायक है। समझ में आया ? ओ..हो..हो...!

'**सम्यग्दर्शन के समानसुखदायक...**' सुख करनेवाला '**अन्य कुछ नहीं है...**' कुछ नहीं है, इसलिए सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की बात कहेंगे। यह तो विशेष है, वह तो महासुखदायक है, वह तो विशेष कहेंगे। समझ में आया ? यह तो सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त की क्रिया पुण्य-पाप के परिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति के (परिणाम) या बाहर के संयोग - ये सब सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त अन्य में कहीं सुख नहीं है - ऐसा कहना है, हाँ !

'**यह सम्यग्दर्शन ही समस्त धर्मों का मूल है...**' समस्त धर्म अर्थात् ? अज्ञानियों के द्वारा कथित धर्म, वह (नहीं)। आत्मा... भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने अनन्त आत्मा देखे, उनमें से यह एक आत्मा, उसकी जो श्रद्धा-ज्ञान, शान्ति, आनन्द, क्षमा आदि के अनन्त धर्म, उनमें यह सबका मूल है। सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। आत्मा की समस्त निर्मल पर्यायें, क्षमा, शान्ति, निर्मानता, निर्लोमता, अमानपना... समझ में आता है ? इत्यादि-इत्यादि निश्चय समिति-गुप्ति इत्यादि जो जीव की धर्म पर्यायें उनमें सबका मूल यह सम्यग्दर्शन है, क्योंकि पूरा आत्मा प्रतीति में, अनुभव में लिये बिना उसमें शक्ति की व्यक्ति का कारण तो यह है। समझ में आया कुछ ?

'**यह सम्यग्दर्शन ही समस्त धर्मो का मूल है...**' सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित आत्मा,

उसका जो सम्यग्दर्शन, उसकी समस्त भगवान के द्वाराकथित निश्चय धर्म की पर्यायों में मूल तो यह है। इसके बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता; इसके बिना चारित्र नहीं होता, इसके बिना क्षमा आदि (नहीं होते)। निर्मान, ऐसे शान्ति दिखे, प्रकृति शान्त... शान्त... यह सब शान्ति सम्यग्दर्शन के बिना झूठी है। समझ में आया ? आहा..हा... ! इसके बिना... लो, यह तो स्वयं कहते हैं।

'**इस सम्यग्दर्शन के बिना समस्त क्रियायें दु:खदायक है...**' समझ में आया ? एक सम्यग्दर्शन आत्मा की निर्विकल्प अनुभव दृष्टि के बिना जितनी शास्त्र के पढ़ने की क्रिया, दया, दान, व्रत, भक्ति की क्रिया, पूजा की क्रिया, भानरहित अन्तर ध्यान की क्रिया, सम्यग्दर्शनरहित ध्यान की क्रिया दु:खदायक है। समझ में आया ? यह भी ऐसा ध्यान तो करे न ? किसका ध्यान ? वस्तु के भान बिना ध्यान कहाँ आया तेरा ?

मुमुक्षु :- मस्ती (का आनंदानुभव) तो करता है।

उत्तर :- मस्ती करता है अज्ञान की। आर्तध्यान हो, आर्तध्यान, उसकी मस्ती होती है। ऐसे बहुत बाबा होते है मस्त.. मस्त ऐसे मानो। हों मूढ़ मिथ्यादृष्टि ! आहा..हा... !

'**इस सम्यग्दर्शन के बिना...**' समस्त क्रियाओं में क्या बाकी रहा ? दया, दान, शास्त्र-स्वाध्याय, धर्मकथा, मन्दिर बनाने का भाव... मन्दिर तो पर वहाँ रह गया, भाई ! क्या हुआ यह ? आहा..हा... ! भाई ! जिसका मूल नहीं, उसके वृक्ष फूले-फले है - ऐसा कैसे कहना ? 'मूलं नास्ति कुतो शाखा' - जहाँ पहली वस्तु ही क्या है ? एक भगवान पूर्णानन्द एक-एक आत्मा भिन्न, उसका अन्तर में भान नहीं - ऐसे अनन्त परमात्मा-आत्मा भिन्न-भिन्न सब स्वतन्त्र है। समस्त आत्मायें परमात्मा हो सकते हैं। एक नहीं, हाँ ! एक हो सके नहीं, तीन काल में कभी एक नहीं होते। आहा..हा... ! ऐसे आत्मा के भान बिना समस्त क्रियायें दु:खदायक है, दु:ख की दाता है। पुण्य भाव करे, वह दु:ख का दाता है - ऐसा कहा, लो ! ऐसा कहा या नहीं इसमें ? व्रत के परिणाम, पंच महाव्रत के परिणाम दु:ख के देनेवाले है - ऐसा कहते हैं, लो !

मुमुक्षु :- शास्त्र का ज्ञान तो सुख देनेवाला है न ?

उत्तर :- सब दु:ख का देनेवाला है। उसके कारण धर्म होता होगा ? अरे.. ! भगवान ! पूरा आत्मा प्रभु पड़ा रहा, पूरी अस्ति पड़ी रही। अस्ति - महातत्त्व भगवान पूरा आत्मतत्त्व क्या है ? उस बिना की सब बातें दु:खदायक हैं, कहते है।

'**सम्यग्दृष्टि जीव आयु पूर्ण होने पर जब मृत्यु...**' मृत्यु अर्थात् समझाना क्या ? देह छूटे, उसका नाम मरे। आत्मा मरता कहाँ है ? समझाने की शैली क्या होगी ? परन्तु उसे अभी देह होता है, वह देह छूटता है - ऐसा सब सिद्ध करना है। '**तब दूसरे से सातवें नरक का नारकी...**' उसमें नहीं जाता। '**ज्योतषी, व्यंतर, भवनवासी, नपुंसक...**' पहले नरक के नपुंसक के अतिरिक्त '**समस्त प्रकार की स्त्री...**' समस्त प्रकार की स्त्री में नहीं जाता।

इसमें चिह्न किया है, नहीं ? देखो ! यह सब किया है, हों ! देखो ! गति बनायी है। छह नरक लिये हैं। यह लिखा है, क्या कहलाता है ? ज्योतिषी। यह चन्द्र ज्योतिषी (देव) है। यह व्यंतर, स्थावर सब अलग-अलग लिये हैं। यह तो ठीक, यहाँ देखो ! मोक्ष का महल लिया, देखो ! सीढ़िया ! सम्यग्दर्शन पहली सीढी ली है। और यहाँ उस नपुंसक को कहाँ लिया है ? यह रहा, देखो ! नपुंसक। एक ने स्त्री का वेष पहिना है, परन्तु है नपुंसक वह ढोल बजाता है। ऐसे नपुंसक भी अभी होते हैं। स्वयं (नपुंसक), हो परन्तु फिर स्त्री के वस्त्र पहिनता है, ऐसे ढोल बजाता है, देखो ! यह बजाता है। समझे न ? मनुष्य के नपुंसक में उत्पन्न नहीं होता - ऐसा बताना है। समझ में आया ?

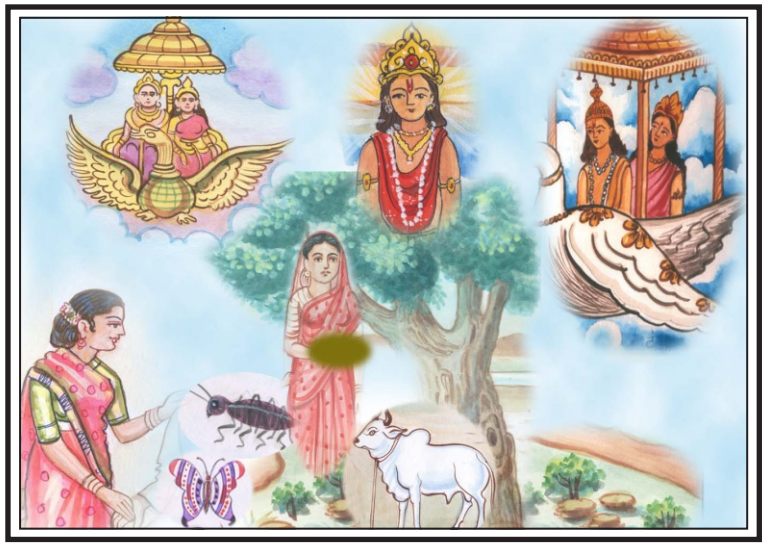

'**एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कर्मभूमि के पशु नहीं होते...**' अर्थात् पहले (आयु) बँध (गयी होवे तो) भोगभूमि के होते हैं।'**(नीच फलवाले, विकृत अंगवाले, अल्पायुवाले तथा दरिद्री नहीं होते)**;...' समझ में आया ?'**विमानवासी देव, भोगभूमि के मनुष्य अथवा तिर्यञ्च होते हैं।**' विमानवासी देव होते हो या आयु बँध गयी होवे तो भोगभूमि के मनुष्य अथवा तिर्यञ्च होते हैं।'**कर्मभूमि के तिर्यञ्च भी नहीं होते। कदाचित् नरक में जाएँ तो पहले नरक से नीचे नहीं जाते। तीन लोक और तीन काल में सम्यग्दर्शन के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह सम्यग्दर्शन ही सर्व धर्मों का मूल है।**' भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित समस्त धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उत्तम क्षमा आदि परमात्मा के द्वारा कथित, हाँ ! इन सबका मूल सम्यग्दर्शन है। '**इसके बिना जितने क्रियाकाण्ड है, वह सब दुःखदायक होते हैं।**' नीचे स्पष्टीकरण किया है। ठीक, बात हो गयी है। कहो, समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र का मिथ्यापना

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, कालवृथा मत खोवै;
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

अन्वयार्थ :- (यह सम्यग्दर्शन) (मोक्षमहलकी) मोक्षरूपी महल की (परथम) प्रथम (सीढी) सीढ़ी है; (या बिन) इस सम्यग्दर्शन के बिना (ज्ञान चरित्रा) ज्ञान और चारित्र (सम्यक्ता) सच्चाई (न लहै) प्राप्त नहीं करते; इसलिये (भव्य) है भव्य जीवो ! (सो) ऐसे (पवित्रा) पवित्र (दर्शन) सम्यग्दर्शन को (धारा) धारण करो। (सयाने 'दौल') हे समझदार दौलतराम ! (सु) सुन, (समझ) समझ और (चेत) सावधान हो, (काल) समय

को (वृथा) व्यर्थ (मत खोवै) न गँवा; (क्योंकि) (जो) यदि (सम्यक्) सम्यग्दर्शन (नहिं होवै) नहीं हुआ तो (यह) यह (नर भव) मनुष्य पर्याय (फिर) पुनः (मिलन) मिलना (कठिन है) दुर्लभ है।

भावार्थ :- यह [१]सम्यग्दर्शन ही मोक्षरूपी महल में पहुँचने की प्रथम सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन न हो तब तक ज्ञान वह मिथ्याज्ञान और चारित्र वह मिथ्याचारित्र कहलाता है। सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र नहीं कहलाते। इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी को ऐसा पवित्र सम्यग्दर्शन अवश्य धारण करना चाहिए। पण्डित दौलतरामजी अपने आत्मा को सम्बोधकर कहते हैं कि - है विवेकी आत्मा ! तू ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन के स्वरूप को स्वयं सुनकर अन्य अनुभवी ज्ञानियों से प्राप्त करने में सावधान हो; अपने अमूल्य मनुष्यजीवन को व्यर्थ न गँवा। इस जन्म में ही यदि समकित प्राप्त न किया तो फिर मनुष्यपर्याय आदि अच्छे योग पुनः पुनः प्राप्त नहीं होते।

तीसरी ढाल का सारांश

आत्मा का कल्याण सुख प्राप्त करने में हैं। आकुलता का मिट जाना वह सच्चा सुख है; मोक्ष ही सुखरूप है; इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी को मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करना चाहिए।

निश्चयसम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र- इन तीनों की एकता सो मोक्षमार्ग है। उसका कथन दो प्रकार से है। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो वास्तव में मोक्षमार्ग है, और व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्षमार्ग नहीं है किन्तु वास्तव में बन्धमार्ग है; लेकिन निश्चयमोक्षमार्ग में सहचर होने से उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा जाता है।

आत्मा की परद्रव्यों से भिन्नता का यथार्थ श्रद्धान सो निश्चयसम्यग्दर्शन है और परद्रव्यो

---

१ सम्यग्दृष्टि जीवकी, निश्चय कुगति न होय।
पूर्वबन्ध तें होय तो सम्यक् दोष न कोय।।

से भिन्नता का यथार्थ ज्ञान सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है। परद्रव्यों का आलम्बन छोड़कर आत्मस्वरूप में लीन होना सो निश्चय सम्यक्चारित्र है। तथा सातों तत्त्वों का यथावत् भेदरूप अटल श्रद्धान करना सो व्यवहार-सम्यग्दर्शन कहलाता है। यद्यपि सात तत्त्वों के भेद की अटल श्रद्धा शुभराग होने से वह वास्तव में सम्यग्दर्शन नहीं है, किन्तु निम्न अवस्था में (चौथे, पामचवें और छठ्ठे गुणस्थान में) निश्चय समकित के साथ सहचर होने से वह व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है।

आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन और शंकादि आठ-यह सम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं, तथा नि:शंकितादि आठ समकित के अंग (गुण) हैं; उन्हें भलीभाँति जानकर दोष का त्याग तथा गुण का ग्रहण करना चाहिए।

जो विवेकी जीव निश्चय सम्यक्त्व को धारण करता है उसे जब तक निर्बलता है तब तक; पुरुषार्थ की मन्दता के कारण यद्यपि किंचित् संयम नहीं होता, तथापि वह इन्द्रादि के द्वारा पूजा जाता है। तीन लोक और तीन काल में निश्चय समकित के समान सुखकारी अन्य कोई वस्तु नहीं है। सर्व धर्मों का मूल, सार तथा मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी यह समकित ही है; उसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते किन्तु मिथ्या कहलाते हैं।

आयुष्य का बन्ध होने से पूर्व समकित धारण करनेवाला जीव मृत्यु के पश्चात् दूसरे भव में नारकी, ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी, नपुंसक, स्त्री, स्थावर, विकलत्रय, पशु, हीनांग, नीच गोत्रवाला, अल्पायु तथा दरिद्री नहीं होता। मनुष्य और तिर्यंच सम्यग्दृष्टि मरकर वैमानिक देव होता है देव और नारकी सम्यग्दृष्टि मरकर कर्मभूमि में उत्तम क्षेत्र में मनुष्य ही होता है। यदि सम्यग्दर्शन होने से पूर्व- १ देव, २ मनुष्य, ३ तिर्यंच या ४ नरकायु का बन्ध हो गया हो तो, वह मरकर १ वैमानिक देव, २ भोगभूमि का मनुष्य; ३ भोगभूमि का तिर्यंच अथवा ४ प्रथम नरक का नारकी होता है। इससे अधिक नीचे के स्थान में जन्म नहीं होता। - इस प्रकार निश्चयसम्यग्दर्शन की अपार महिमा है।

इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी को सत्शास्त्रों का स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा, सत्समागम तथा यथार्थ तत्तवविचार द्वारा निश्चयसम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि यदि इस मनुष्यभव में निश्चय समकित प्राप्त नहीं किया तो पुन: मनुष्यपर्याय प्राप्ति आदि का सुयोग मिलना कठिन है।

अब, '**सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र का मिथ्यापना।**'

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, कालवृथा मत खोवै;
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

'**मोक्षमहलकी परथम सीढी या बिन ज्ञान चरित्रा; या बिन ज्ञान चरित्रा।**' नाम तो दिया, हाँ ! मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी-सौपान-सीढ़ी यह है। पहले सोपान नहीं हो तो दूसरा सोपान नहीं होता - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- चारित्र है, इसलिए सम्यग्दर्शन ही होगा।

उत्तर :- परन्तु चारित्र कहाँ ? चारित्र हो वहाँ सम्यग्दर्शन होता ही है (- ऐसा कहते हैं), परन्तु वह चारित्र था कब ? पंच महाव्रत के परिणाम, दया, दान, अहिंसा - यह सब विकल्प तो शुभभाव है। वह चारित्र कैसा ? समझ में आया ?

'**मोक्षरूपी महल की पहली (सीढ़ी) सोपान है...**' पहली ही सीढ़ी यह है। अभी जहाँ पहली सीढ़ी ही हाथ नहीं आयी, वह मोक्ष में चढ़ने लगे (- ऐसा नहीं हो सकता)। समझ में आया ? पहली सीढ़ी (आयी न हो और) छलांग लगाकर दूसरी, तीसरी (सीढ़ी पर) जाए तो ? परन्तु (ऐसा) होता ही नहीं। सम्यग्दर्शन के बिना कोई ज्ञान भी सच्चा नहीं होता और व्रत भी सच्चे नहीं होते। मिथ्याज्ञान पुण्यबन्ध का कारण दुःखदायक हो सकता है। आहा..हा... !

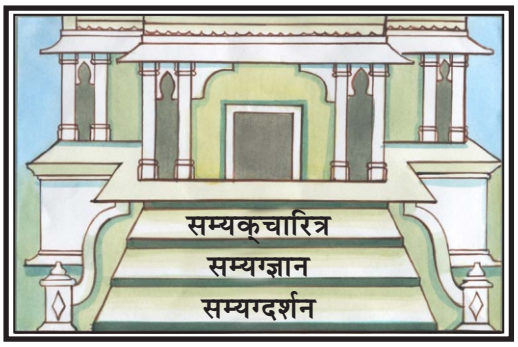

मुमुक्षु :- छलांग लगाकर चढे।

उत्तर :- यह होता ही नहीं। वह चढ ही नहीं सकता। यह ख्याल है, दिमाग में तो

ख्याल था।

'इस सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र... मोक्षरूपी महल की पहली सीढ़ी है...' यहाँ तो ऐसा सिद्ध करते हैं। पूर्णानन्द की आत्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष; मोक्ष अर्थात् पूर्ण शुद्धता। अवस्था-पर्याय है। मोक्ष, वह पर्याय है।

मुमुक्षु :- इसमें बड़ा महल बताया है।

उत्तर :- हाँ कहा न। बड़े महल की पर्याय है, निर्मल पर्याय है। मोक्ष, वह कोई गुण नहीं, द्रव्य नहीं; आत्मा की पूर्ण निर्मल शुद्ध आनन्द अवस्था है, पर्याय है, हालत है - उसका नाम मोक्ष है। उस मोक्षमहल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन संवर-निर्जरास्वरूप है। लो ! समझ में आया ? उसका लक्ष्य ठेठ है। सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य पूर्ण शुद्ध और आनन्द प्रकटने के लिए है और उसके बिना पूर्ण शुद्ध की श्रेणी की धारा कहाँ से चलेगी ? समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को बीच में राग हो, आस्रव हो, पुण्य हो, छठवें गुणस्थान में मुनि को, सच्चे सम्यग्दर्शनसहित को व्रत भी आते हैं, परन्तु वह आस्रव है, उसमें उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती ! उसकी तो शुद्धता... पूर्ण शुद्धता उस शुद्धता के अंश बढ़ते जाते है, परंतु उस शुद्धता के अंश पर्याय बढ़े और पूर्ण शुद्ध हो उसकी शुरूआत की शुद्धता सम्यग्दर्शन से होती है; उसके बिना शुद्धता (पूर्ण नहीं होती)। वह शुद्धता, हाँ ! शुभभाव की शुद्धता नहीं। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- शुभभाव...

उत्तर :- नहीं, नहीं; शुभभाव पहली सीढ़ी का फल नहीं है और शुभभाव का यह फल नहीं हैं। कहो, समझ में आया ?

यह चैतन्य गोला अनन्त गुणों का पिण्ड शुद्ध आनन्दकन्द है, जिसकी शक्ति में अनन्त परमात्मा पड़े हैं, एक आत्मा में ! ऐसे अनंत आत्मा के परमात्म स्वरूप की दृष्टि बिना, कहते हैं, पूर्ण परमात्मा ऐसी मोक्षगति की श्रेणी उसके बिना इसका सब मिथ्या है। पहली श्रेणी ही यह है।

'इस सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र...' क्या भाषा ली है ? देखो ! **'सच्चाई प्राप्त नहीं करते...'** मिथ्यापना भले पावें। झूठा ज्ञान और चारित्र। समझ में आया ? चाहे

जितना पढ़ा हो, ग्यारह अंग और नौ पूर्व (पढ़ा हो) हजारों-लाखों लोगों को रंजन करता हो। ओ..हो..हो...! क्या पढ़ाई और क्या इसका ज्ञान ! धारावाही ! बिना पुस्तक दो-दो, पाँच-पाँच घण्टे मुँह से बात करे, परन्तु सम्यक् भान, अन्तरदृष्टि के इस भान बिना वह समस्त ज्ञान सच्चेपन को प्राप्त नहीं होता। लो !

'**और चारित्र...**' सम्यग्दर्शन के बिना पाँच महाव्रत धारे, नग्न दिगम्बर हो जाए, मुनि, हाँ ! द्रव्यलिंगी, द्रव्य समकित और द्रव्य चारित्र। द्रव्य समकित अर्थात् उसकी व्यवहार श्रद्धा हो - देव-शास्त्र-गुरु की (श्रद्धा हो) निश्चय बिना, हाँ ! यह सब उसके सच्चेपने को प्राप्त नहीं होता। समझ में आया ? आहा..हा...! ऐसा कहा कि सम्यग्दर्शन हो तो फिर ज्ञान-चारित्र भी होता है। ऐसा साथ कहा न ? परन्तु उसके बिना ज्ञान-चारित्र नहीं होते अर्थात् सत्य नाम नहीं पाते, सब मिथ्या।

'**इसलिए हे भव्य जीवो ! ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करो...**' देखो ! प्रथम में प्रथम भगवान आत्मा नव तत्त्व में अजीव, आस्रव, बन्ध, पुण्य-पाप से भिन्न ऐसा पूर्ण अखण्ड आत्मा, एकरूप अपने अभेद द्रव्य की श्रद्धा प्रथम में प्रथम प्रकट करो। इस पवित्र श्रद्धा के बिना धर्म का एक कदम भी नहीं होगा। समझ में आया ? आहा..हा...! थोड़े में भी बहुत भर दिया है। '**हे भव्यजीवों !**' भाषा ऐसी ली है न ? अभव्य नहीं लिये। '**धारो भव्य पवित्रा**' अभव्य को नहीं होता, इसलिए भव्य लिया है। देखो ! जगत में अभव्य जीव हैं - यह सिद्ध करते हैं। कभी-भी मुक्ति प्राप्ति नहीं करें - ऐसे अभव्य जीव जगत में अनन्त है। अनादिकाल के है और (अनन्त काल) रहेंगे। तब भव्य नाम आया न ? हे भव्य ! छाँटकर कहा, उन अभव्योमें से निकालकर कहा। समझ में आया ? आहा..हा...! और जीव के दो भाग ? भव्य और अभव्य... (फिर इसमें) विवाद। अज्ञानी को तो क्षण में और पल में आपत्ति (होती है)। दो भाव है, दो भाव।

हे भव्य !'**ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करो।**' ऐसी सिफारिश की है। अब, वे एक सिफारिश स्वयं को करेंगे और दूसरों को करेंगे। यह एक शैली बाकी है।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)